अर्थान्तरं संक्रमिते वाच्येऽत्यन्तं तिरस्कृते ।

अविवक्षितवाच्योऽपि ध्वनिर्द्वैविध्यमृच्छति ॥ ३ ॥

अविवक्षितवाच्यो नाम ध्वनिरर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्योऽत्यन्ततिरस्कृतवाच्यश्चेति द्विविधः। यत्र स्वयमनुपयुज्यमानो मुख्योऽर्थः स्वविशेषरूपेऽर्थान्तरे परिणमति, तत्र मुख्यार्थस्य स्वविशेषरूपार्थान्तरसंक्रमितत्वादर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यत्वम्। यथा- 'कदली. कदली, करभः करभः, करिराजकरः करिराजकरः।

भुवनत्रितयेऽपि बिभर्ति तुलानमिदनमूरुयुगं न चमूरुदृशः।।'

अत्र द्वितीयकदल्यादिशब्दाः पौनरुक्त्यभिया सामान्यकदल्यादिरूपे मुख्यार्थे बाधिता जाड्यादिगुणविशिष्टकदल्यादिरूपमर्थं बोधयन्ति। जाड्याद्यतिशयश्च व्यङ्ग्यः।

अविवक्षितवाच्यध्वनि (लक्षणामूलक ध्वनि) के दो भेद- अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य और अत्यंततिरस्कृतवाच्य। जब वाच्य अर्थान्तर यानि अन्य अर्थ में संक्रमित हो जाता है तो अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य होता है। जब वाच्य अत्यंत तिरस्कृत यानि वाच्य अर्थ तिरस्कृत हो जाता है तो अत्यंततिरस्कृतवाच्य होता है। इसको विस्तार से कहा जा सकता है कि जहां पर शब्द का मुख्य अर्थ प्रकरण में स्वयं अनुपयुज्यमान या बाधित होने के कारण अपने विशेष स्वरूप अर्थान्तर में परिणत होता है तो उसे अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य कहते हैं। यह अन्वर्थसंज्ञा है। जैसे- कदली कदली ही है और करभ करभ ही है, हाथी का सूंड भी हाथी का सूंड ही है। मृगनयनी सीता की दोनों

जंघाएँ तीनों लोकों में अपना सादृश्य नहीं रखतीं (रावण की उक्ति – प्रसन्नराघव नाटक, स्वयंवर का अवसर)। वस्तुतः इनमें से कोई भी उपमा देने योग्य नहीं है। उपर्युक्त उदाहरणों में कदली आदि यदि मुख्य अर्थ का ही द्योतन करेंगे तो पुनरुक्ति दोष होगा अतः वे मुख्यार्थ में बाधित होकर जाड्यगणविशिष्ट कदली आदि का ही बोधन करते हैं, अतः यहाँ अर्थान्तर में संक्रमित हैं। यहाँ प्रयोजनवती लक्षणा है। जाड्य आदि गुणों की अधिकता व्यंग्य है। यही लक्षणा का प्रयोजन है। जब कहा जाता है कि कौआ कौआ ही है तो दूसरी बार कौआ का अर्थ कड़वे स्वर वाले पक्षी से है और यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं है।

यत्र पुनः स्वार्थं सर्वथा परित्यजन्नर्थान्तरे परिणमति, तत्र मुख्यार्थस्यात्यन्ततिरस्कृतत्वादत्यन्ततिरस्कृतवाच्यत्वम्।
यथा- 'निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते।'
अत्रान्धशब्दो मुख्यार्थे बाधितेऽप्रकाशरूपमर्थं बोधयति। अप्रकाशातिशयश्च व्यंग्यः।
जहां शब्द अपने मुख्य अर्थ को सर्वथा छोड़कर अर्थान्तर में परिणत होता है वहाँ वाच्य के अत्यंत तिरस्कृत होने के कारण अत्यंततिरस्कृतवाच्य ध्वनि होती है। जैसे निःश्वास से अंधे या मलिन दर्पण के समान चंद्रमा प्रकाशित नहीं होता। इस उदाहरण में दर्पण को अंधा कहा गया है। अंधा वह हो सकता है जिसमें आँख होने की योग्यता हो किन्तु दर्पण में तो यह योग्यता है ही नहीं। अतः यहाँ अंध शब्द का मुख्य अर्थ का पूर्णतः तिरस्कार हो जाता है और लक्षणा द्वारा अप्रकाश अर्थ स्थापित होता है। यहाँ भी प्रयोजनवती लक्षणा है।